युग वाणी

[गीत-गद्य]

श्रीसुमित्रानंदन पंत

दृष्टिपात

युगवाणी का तीसरा संस्करण पाठकों के सामने प्रस्तुत है। इसमें मैंने युगवाणी के कलापक्ष के सम्बन्ध में दो शब्द लिखकर, पाठकों की सुविधा के लिए, युग दर्शन के प्रमुख तत्वों पर भी प्रकाश डाला है।

युगवाणी को मैंने गीत गद्य इसलिए नहीं कहा है कि उसमें काव्यात्मकता का अभाव है; प्रत्युत, उसका काव्य अप्रच्छन्न, अनलंकृत तथा विचार भावना प्रधान है। युग के खँडहर पर युगवाणी का काव्य सौन्दर्य प्रभात के ईषत् स्वर्णिम आतप की तरह बिखरा हुआ है, जिसे कला प्रेमी, ध्वंस के ढेर से दृष्टि हटाकर, सहज ही देख सकते हैं।

युगवाणी की भाषा सूक्ष्म है, उसमें विश्लेषण का सौन्दर्य है। जिस परंपरागत मधुवन को हम पल्लवों के मर्मर से लज्जारुण और फूलों के रंग गुंजन से यौवन गर्वित देखते आए हैं उसकी दक्षिण पवन (काव्य प्रेरणा ?) शिशिर में ठंढी उसासें भर, आज ढेर ढेर पीले पुराने पत्तों को युग परिवर्तन की आँधी में उड़ा कर,—जैसे, उन टूटते हुए स्वप्नों पर स्थिर चरण न रख सकने के कारण ही प्रलय नृत्य करती हुई,—नई संस्कृति के बीज बखेर रही है! युगवाणी में आप टेढ़ी मेढ़ी पतली ठूँठी टहनियों के वन का दूर तक फैला हुआ वासांसि जीर्णानि विहाय···सौन्दर्य देखेंगे, जिससे नव प्रभात की सुनहली किरणें बारीक रेशमी जाली की तरह लिपटी हुई हैं; जहाँ ओसों के झरते हुए अश्रु आगत स्वर्णोदय की आभा में हँसते हुए से दिखाई देते हैं; जहाँ शाखा-प्रशाखाओं के अंतराल से—जिनमें अब भी कुछ विवर्ण पत्ते अटके हुए हैं—छोटे बड़े, तरह तरह के, भावनाओं के नीड़, जाड़ों की ठिठुरती काँपती हुई महानिशा के युगव्यापी त्रास से मुक्त होकर नवीन कोंपलों से छनते हुए नवीन आलोक तथा नवीन ऊष्णता का स्पर्श पाकर फिर से संगीत मुखर होने का प्रयत्न कर रहे हैं।

पत्ते की मांसल हरियाली को जब कीड़े चाट जाते हैं, उसकी सूक्ष्म स्नायुवों से बुनी हुई हथेली का कला-विन्यास जिस प्रकार देखने वालों को आश्चर्य चकित कर देता है उसी प्रकार की मिलती जुलती हुई सौन्दर्य संक्रांति की झाँकी आप युगवाणी में भी पाएँगे। तब आप सहज ही युगवाणी के स्वरों में कह उठेंगे—

सदियों से आया मानव जग में यह पतझर !

और,—

जीवत वसंत तुम, पतझर बन नित आती,
अपरूप, चतुर्दिक सुन्दरता बरसाती !

युगवाणी में प्रकृति सम्बन्धी कविताओं के अतिरिक्त, जो मेरी अन्य प्राकृतिक रचनाओं की तुलना में अपनी विशेषता रखती हैं,—मुख्यतः पाँच प्रकार की विचारधाराएँ मिलती हैं—

(१) भूतवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय, जिससे मनुष्य की चेतना का पथ प्रशस्त बन सके।

(२) समाज में प्रचलित जीवन की मान्यताओं का पर्यालोचन एवं नवीन संस्कृति के उपकरणों का संग्रह।

(३) पिछले युगों के उन मृत आदर्शों और जीर्ण रूढ़ि रीतियों की तीव्र भर्त्सना, जो आज मानवता के विकास में बाधक बन रही हैं।

(४) मार्क्सवाद तथा फ्रॉयड के प्राणिशास्त्रीय मनोदर्शन का युग की विचारधारा पर प्रभाव : जन समाज का पुनःसंगठन एवं दलित लोक समुदाय का जीर्णोद्धार।

(५) बहिर्जीवन के साथ अंतर्जीवन के संगठन की आवश्यकता : राग भावना का विकास तथा नारी जागरण।

युगवाणी की कुञ्जी उसकी बापू शीर्षक पहली कविता में है,—

भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान
जहाँ आत्म दर्शन अनादि से समासीन अम्लान !

मानव-जीवन एवं समाज का रूपांतर करने तथा पृथ्वी पर मानव स्वर्ग बसाने का वस्तु-स्वप्न नवीन युग की भावात्मक देन है। मध्ययुग के दार्शनिकों ने जिस प्रकार बाह्य जीवन सत्य की अवहेलना कर जगत को माया या मिथ्या कहा है और आधुनिक भूतदर्शन जिस प्रकार अन्तर्जीवन सत्य की उपेक्षा कर उसे बहिर्जीवन के अधीन रखना चाहता है, युगवाणी में इन दोनों एकांगी दृष्टिकोणों का खंडन किया गया है।

लोक-कल्याण के लिए जीवन की बाह्य (संप्रति राजनीतिक आर्थिक) और आभ्यंतरिक (सांस्कृतिक आध्यात्मिक) दोनों ही गतियों का संगठन करना आवश्यक है। मात्रा और गुण दोनों

में संतुलन होना चाहिए। जहाँ एक ओर असंख्य नंगे भूखों का उद्धार करना ज़रूरी है वहाँ पिछली संस्कृतियों के विरोधों एवं रीति नीतियों की शृंखलाओं से मुक्त होकर मानव चेतना को, युग उपकरणों के अनुरूप, विकसित लोक-जीवन निर्माण करने में संलग्न होना है।

युगवाणी को विश्वमूर्ति कहा है, जिससे वह जातिगत मन से मुक्त होकर विश्वमन एवं युग के लोकमन को अपने स्वरों में मूर्त कर सके: मनुष्य को अंतर्चेतना में जो सत्य अभी अमूर्त है उसे रूप दे सके: जीवन सौन्दर्य की जो मानसी प्रतिमा आज अंतर्मन में विकसित हो रही है उसे भौतिक जीवन में साकार कर सके; और हमारा मनः स्वर्ग पृथ्वी पर उतर आए। कहीं-कहीं भावी जीवन की कल्पना प्रत्यक्ष हो उठी है। यथा, अब छंदों और प्रासों में सीमित कविता विश्व जीवन के रूप में बहने लगी है, मानव जीवन ही काव्यमय बन गया है: कलात्मक भाव जीवन की वास्तविकता में बँध गए हैं। ऐसे संसार में, जहाँ सांस्कृतिक शक्तियाँ उन्मुक्त हो गई हैं अब जीवन संघर्षण एवं समाज-निर्माण का श्रम सुखद सुन्दर लगता है।

इस युग के असंगठित जीवन को अंधकार कहा है, संगठित मन को प्रकाश। विकसित व्यक्तिवाद के साथ ही विकसित समाजवाद को विशेष महत्व दिया है, जिससे देव बनने के एकांगी प्रयत्न में हम मनुष्यत्व से विरक्त होकर सामाजिक जीवन में पशुओं से भी नीचे न गिर जायँ। देवत्व को आत्मसात् कर हम मनुष्य बने रहें और मानव दुर्बलताओं के भीतर से अपना निर्माण एवं विकास कर सकें। नवीन समाज की परिस्थितियाँ हमें आदर्शों की ओर ले जाने वाली हों। हमारा मन युग युग के छायाभावों से संत्रस्त न रहे, हम आज के मनुष्य की चेतना का, जो खंड युगों की चेतना है, विकसित विश्व परिस्थितियों के अनुरूप संगठन एवं निर्माण कर सकें।

अपने देश में जनसाधारण के मन में जीवन के प्रति जो खोखले वैराग्य की भावना घर कर गई है उसका विरोध कर नवीन सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर नवीन मानसिक जीवन प्रतिष्ठित करने पर ज़ोर दिया गया है। भौतिक विज्ञान के विकास के

कारण भू-रचना के जिस भावात्मक दर्शन का इस युग में आविर्भाव हुआ है उसे युगदर्शन का एक मुख्य स्तंभ माना है।

मध्ययुग आत्मदर्शन या आत्मवाद का सक्रिय, संगठित एवं सामूहिक प्रयोग नहीं कर सका। तब भौतिक विज्ञान इतना समुन्नत नहीं था; वाष्प, विद्युत्, रश्मि आदि मानव जीवन के वाहन नहीं बन सके थे। जीवन की बाह्य परिस्थितियाँ एक सीमा तक विकसित होने के बाद निष्क्रिय और जड़ हो गई थीं। मध्ययुगीन विचारकों, संतों एवं साधुओं के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वे विश्व संचरण के प्रति निरीह होकर (मायावाद-मिथ्यावाद आदि जिसके दुष्परिणाम हैं) व्यक्ति से सीधे परात्पर की ओर चले जाँय। उनके नैतिक उन्नयन के प्रयत्न भगीरथ प्रयत्न कहे जा सकते हैं पर वे राम-प्रयत्न या कृष्ण-प्रयत्न (जिन्हें राम कृष्ण अवतरण कहना उचित होगा) नहीं थे, जिनके द्वारा विश्व संचरण में भी प्रकरांतर या युगांतर उपस्थित हो सकता और जिनकी विकसित चेतना विश्व जीवन के रूप में संगठित एवं प्रतिष्ठित हो सकती। वर्तमान युग, नैतिक उन्नयन से अधिक, इसी प्रकार के बहिरंतर रूपांतर की प्रतीक्षा करता है।

रूप सत्य और कर्म के मन से मेरा अभिप्राय लोक जीवन के संगठित रूप से और संस्कृति के रूप में संगठित मन से है। पिछले जीवन के संगठित सत्य (संस्कृति) को जिसके मूल केवल मध्ययुग की चेतना के आकाश में हैं लोक संग्रह से प्राणशक्ति ग्रहण करने के लिए अधोमूल बन जाना है, फिर से नीचे से ऊपर की ओर उठना है। गीता में जिस विश्व अश्वत्थ को ऊर्ध्वमूल मधः शाखः कहा है वह आध्यात्मिक दृष्टिकोण है जिसके अनुसार विश्वमन (अधिमन) एवं जीवन का समस्त सत्य विज्ञान भूमि में बीज रूप में संचित है, जहाँ से वह जगत जीवन में अवतरित एवं प्रस्फुटित होता है। युगवाणी में, अवतरण और विकास, दोनो संचरणों को महत्व दिया है। इसी प्रकार का समन्वय पाठकों को 'ज्योत्स्ना' में भी मिलेगा।

संक्षेप में मैंने मार्क्सवाद के लोक-संगठन रूपी व्यापक आदर्शवाद और भारतीय दर्शन के चेतनात्मक ऊर्ध्व आदर्शवाद दोनों का संश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। भारतीय विचारधारा भी सत्य, त्रेता, द्वापर, कलियुग के नामों से प्रादुर्भाव, निर्माण, विकास और ह्रास के वृत्त संचरणों पर विश्वास रखती है। अतः नवीन युग की भावना

केवल कपोल कल्पना नहीं है। पदार्थ (मैटर) और चेतना (स्पिरिट) को मैंने दो किनारों की तरह माना है जिनके भीतर जीवन का लोकोत्तर सत्य प्रवाहित एवं विकसित होता है। भविष्य में जब मानव जीवन विद्युत् और अणु शक्ति की सबल टाँगों पर प्रलय वेग से दौड़ने लगेगा तब आज के मनुष्य की तर्कवादों में बिखरी हुई चेतना उसका संचालन करने में किसी तरह भी समर्थ नहीं हो सकेगी। इसलिए सामाजिक जीवन के साथ ही मनुष्य की अंतर्चेतना में भी युगांतर होना अवश्यंभावी है।

इस युगविवर्तन में अनेक अभावात्मक एवं विरोधी शक्तियाँ भी काम कर रही हैं जो हमारे पिछले सामाजिक संबंधों की प्रतिक्रियाएँ हैं। वर्तमान राजनीतिक आर्थिक आंदोलन इन्हीं विरोधों को दबाने एवं नवीन भाव परिस्थितियों का निर्माण करने के लिए जन्म ले रहे हैं। एक विरोधीतत्व और भी है, जो इनसे सूक्ष्म है। वह है मनुष्य का रागतत्व, जो पिछले युगों के संस्कारों से रंजित और सीमित है। इस रागतत्व को अपने विकास के लिए भविष्य में अधिक ऊर्ध्व एवं व्यापक धरातल चाहिए। वर्तमान नारी जागरण और नारी मुक्ति के आन्दोलन उस धरातल पर पहुँचने के लिए सोपान मात्र हैं। राग संबंधी आंदोलन एक प्रकार से अभी अविकसित और पिछड़ा हुआ है। प्राणिशास्त्रीय मनोविज्ञान उस पर केवल आंशिक प्रकाश डालता है। मनुष्य स्वभाव को संस्कृत बनाने के लिए रागात्मिका प्रवृत्ति का विकास होना अनिवार्य है। वह एक मूल प्रवृत्ति है। इस वृत्ति के विकास से मनुष्य अपने देवत्व के समीप पहुँच जायगा और संसार में नर-नारी संबंधी रागात्मक मान्यताओं में प्रकारांतर हो जाएगा। स्त्री पुरुष भौतिक विज्ञान शक्ति से संगठित भावी लोकतंत्र में रहने योग्य संस्कार विकसित प्राणी बन सकेंगे। तब शायद धरती की चेतना स्वर्ग के पुलिनों को छूने लगेगी। राग संबंधी इस संचरण के लिए युगवाणी में यत्र तत्र संकेत किया गया है।

मुझे विश्वास है इन दृष्टिकोणों से युगवाणी को समझने में पाठकों को सुविधा होगी। दर्शन पक्ष के लिए आधुनिक कवि (भाग दो) की भूमिका को पढ़ना भी उपयोगी सिद्ध होगा। इति।

प्रयाग, २४ सितम्बर '४७

श्री सुमित्रानन्दन पंत

सूची

बापू !

किन तत्वों से गढ़ जाओगे तुम भावी मानव को ?
किस प्रकाश से भर जाओगे इस समरोन्मुख भव को ?
सत्य अहिंसा से आलोकित होगा मानव का मन ?
अमर प्रेम का मधुर स्वर्ग बन जावेगा जग जीवन ?
आत्मा की महिमा से मंडित होगी नव मानवता ?
प्रेम शक्ति से चिर निरस्त्र हो जावेगी पाशवता ?

बापू ! तुमसे सुन आत्मा का तेजराशि आह्वान
हँस उठते हैं रोम हर्ष से, पुलकित होते प्राण !
भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान,
जहाँ आत्म दर्शन अनादि से समासीन अम्लान !
नहीं जानता युग विवर्त में होगा कितना जन क्षय ,
पर मनुष्य को सत्य अहिंसा इष्ट रहेंगे निश्चय !
नव संस्कृति के दूत ! देवताओं का करने कार्य
आत्मा के उद्धार के लिए आए तुम अनिवार्य ?

युगवाणी

युग की वाणी,
हे विश्वमूर्ति, कल्याणी!
रूप रूप बन जाँय भाव स्वर,
चित्र-गीत झंकार मनोहर,
रक्त मांस बन जाँय निखिल
भावना, कल्पना, रानी!
युग की वाणी!

आत्मा ही बन जाय देह नव,
ज्ञान ज्योति ही विश्व स्नेह नव,
हास, अश्रु, आशाऽकांक्षा
बन जाँय खाद्य, मधु, पानी!
युग की वाणी!

स्वप्न वस्तु बन जाय सत्य नव,
स्वर्ग मानसी ही भौतिक भव,
अन्तर जग ही बहिर्जगत
बन जावे, वीणापाणि, इ!
युग की वाणी!

सर्व मुक्ति हो मुक्ति तत्व अब,
सामूहिकता ही निजत्व अब,
बने विश्व जीवन की स्वरलिपि
जन जन मर्म कहानी!
कवि की वाणी!

नव दृष्टि

खुल गए छंद के बंध,
प्रास के रजत पाश,
अब गीत मुक्त,
औ' युग वाणी बहती अयास !
बन गए कलात्मक भाव
जगत के रूप नाम,
जीवन संघर्षण देता सुख,
लगता ललाम !

सुंदर, शिव, सत्य
कला के कल्पित माप-मान
बन गए स्थूल,
जग जीवन से हो एकप्राण !
मानव स्वभाव ही
बन मानव - आदर्श सुकर
करता अपूर्ण को पूर्ण,
असुंदर को सुन्दर !

मानव !

जग-जीवन के तम में
दैन्य, अभाव शयन में
परवश मानव !
बुन स्वप्नों के जाल
ढँक दो विश्व-पराभव
कुत्सित, गर्हित, घोर !

ऊर्णनाभ-से प्राण
सूक्ष्म, अमर अंतर-जीवन का
तानें मधुर वितान,
देश काल के मिला छोर !

पशु-जीवन के तम में
जीवन रूप मरण में
जाग्रत मानव !
सत्य बनाओ स्वप्नों को
रच मानवता नव,
हो नव युग का भोर !

युग उपकरण

वह जीवित संगीत, लीन हो जिसमें जग-जीवन-संघर्ष,
वह आदर्श, मनुज-स्वभाव ही जिसका दोष-शुद्ध निष्कर्ष !
वह अन्तः सौन्दर्य, सहन कर सके बाह्य वैरूप्य विरोध,
सक्रिय अनुकंपा, न घृणा का करे घृणा से जो परिशोध !

नम्र शक्ति वह, जो सहिष्णु हो, निर्बल को बल करे प्रदान,
मूर्त प्रेम, मानव मानव हों जिसके लिए अभेद्य, समान !
वह पवित्रता, जगती के कलुषों से जो न रहे संत्रस्त,
वह सुख, जो सर्वत्र सभी के सुख के लिए रहे सन्यस्त !

ललित कला, कुत्सित कुरूप जग का जो रूप करे निर्माण,
वह दर्शन-विज्ञान, मनुजता का हो जिससे चिर कल्याण !
वह संस्कृति, नव मानवता का जिसमें विकसित भव्य स्वरूप,
वह विश्वास, सुदुस्तर भव-सागर में जो चिर ज्योति-स्तूप !

रीति नीति, जो विश्व प्रगति में बनें नहीं जड़ बंधन-पाश,
—ऐसे उपकरणों से हो भव-मानवता का पूर्ण विकास !

नव संस्कृति

भाव कर्म में जहाँ साम्य हो संतत,
जग-जीवन में हों विचार जन के रत !
ज्ञान-वृद्ध, निष्क्रिय न जहाँ मानव मन,
मृत आदर्श न बंधन, सक्रिय जीवन !
रूढ़ि रीतियाँ जहाँ न हों आराधित,
श्रेणी वर्ग में मानव नहीं विभाजित !
धन-बल से हो जहाँ न जन श्रम शोषण,
पूरित भव-जीवन के निखिल प्रयोजन !

जहाँ दैन्य जर्जर, अभाव-ज्वर पीड़ित
जीवन यापन हो न मनुज को गर्हित !
युग युग के छाया-भावों से त्रासित
मानव प्रति मानव-मन हो न सशंकित !
मुक्त जहाँ मन की गति, जीवन में रति
भव-मानवता में जन-जीवन परिणति !
संस्कृत वाणी, भाव, कर्म, संस्कृत मन,
सुन्दर हों जन-वास, वसन, सुन्दर तन !

—ऐसा स्वर्ग धरा में हो समुपस्थित,
नव मानव-संस्कृति-किरणों से ज्योतित !

पुण्य प्रसू

ताक रहे हो गगन ?
मृत्यु-नीलिमा-गहन गगन ?
अनिमेष, अचितवन, काल-नयन
निःस्पन्द शून्य, निर्जन, निःस्वः

देखो भू को !
जीव प्रसू को !
हरित भरित
पल्लवित मर्मरित
कूजित गुंजित
कुसुमित
भू को !

कोमल
चंचल
शाद्वल
अंचल,—
कल कल
छल छल
चल-जल-निर्मल,—

कुसुम खचित
मारुत सुरभित
खग कुल कूजित
प्रिय पशु मुखरित—

जिस पर अंकित
सुर मुनि वंदित
मानव पद-तल !

देखो भू को,
स्वर्गिक भू को,
मानव पुण्य-प्रसू को !

चींटी

चींटी को देखा ?
वह सरल विरल, काली रेखा
तम के तागे-सी जो हिल डुल
चलती लघुपद पल पल मिल जुल
वह है पिपीलिका पाँति !
देखो ना, किस भाँति

काम करती वह संतत ?
कन-कन कनके चुनती अविरत !

गाय चराती,
धूप खिलाती,

बच्चों की निगरानी करती,
लड़ती, अरि से तनिक न डरती,
दल के दल सेना सँवारती,
घर, आँगन, जनपथ बुहारती !

देखो वह वल्मीकि सुघर,
उसके भीतर हैं दुर्ग, नगर !
अद्भुत उसकी निर्माण-कला,
कोई शिल्पी क्या कहे भला !

उसमें हैं सौध, धाम, जनपथ,
आँगन, गो-गृह, भंडार अकथ;
हैं डिम्ब-सद्म, वर शिविर रचित,
ड्योढ़ी बहु, राजमार्ग विस्तृत !

चींटी है प्राणी सामाजिक,
वह श्रमजीवी, वह सुनागरिक !
देखा चींटी को ?
उसके जी को ?
भूरे बालों की-सी कतरन,
छिपा नहीं उसका छोटापन,
वह समस्त पृथ्वी पर निर्भय
विचरण करती, श्रम में तन्मय,
वह जीवन की चिनगी अक्षय !
वह भी क्या देही है तिल-सी !
प्राणों की रिलमिल-झिलमिल-सी !
दिन भर में वह मीलों चलती,
अथक, कार्य से कभी न टलती,
वह भी क्या शरीर से रहती ?
वह कण, अणु, परिमाणु ?
चिर सक्रिय वह, नहीं स्थाणु !
हा मानव !
देह तुम्हारे ही है, रे शव !
तन की चिंता में घुल निशिदिन
देह मात्र रह गए, दबा तिन !
प्राणि प्रवर
हो गए निछावर
अचिर धूलि पर !!
निद्रा, भय, मैथुनाहार
—ये पशु-लिप्साएँ चार—
हुईं तुम्हें सर्वस्व-सार ?

धिक् मैथुन-आहार-यंत्र !
क्या इन्हीं बालुका-भीतों पर
रचने जाते हो भव्य, अमर
तुम जन-समाज का नव्य तंत्र ?
मिली यही मानव में क्षमता ?
पशु, पक्षी, पुष्पों से समता ?
मानवता पशुता समान है ?
प्राणिशास्त्र देता प्रमाण है ?

बाह्य नहीं, आंतरिक साम्य
जीवों से मानव को प्रकाम्य !
मानव को आदर्श चाहिए,
संस्कृति, आत्मोत्कर्ष चाहिए;
बाह्य विधान उसे हैं बंधन
यदि न साम्य उनमें अंतरतम—
मूल्य न उनका चींटी के सम
वे हैं जड़, चींटी है चेतन !
जीवित चींटी, जीवन-वाहक,
मानव जीवन का वर नायक,
वह स्व-तंत्र, वह आत्म-विधायक !

... ...

पूर्ण तंत्र मानव, वह ईश्वर,
मानव का विधि उसके भीतर !

पतझर

रिक्त हो रहीं आज डालियाँ,—डरो न किंचित्
रक्त पूर्ण, मांसल होंगी फिर, जीवन रंजित !
जन्मशील है मरण : अमर मर मर कर जीवन,
झरता नित प्राचीन, पल्लवित होता नूतन !

पतझर यह, मानव जीवन में आया पतझर,
आज युगों के बाद हो रहा नया युगांतर !
बीत गए बहु हिम, वर्षातप, विभव पराभव,
जग जीवन में फिर वसंत आने को अभिनव !

झरते हों, झरने दो पत्ते,—डरो न किंचित्
नवल मुकुल मंजरियों से भव होगा शोभित !
सदियों में आया मानव जग में यह पतझर,
सदियों तक भोगोगे नव मधु का वैभव वर !

शिल्पी

इस क्षुद्र लेखनी से केवल
करता मैं छाया लोक सृजन ?
पैदा हो मरते जहाँ भाव,
बुद्बुद-विचार औ' स्वप्न सघन?

निर्माण कर रहे वे जग का
जो जोड़ ईंट, चूना, पत्थर,
जो चला हथौड़े, घन, क्षण क्षण
हैं बना रहे जीवन का घर?

जो कठिन हलों की नोकों से
अविराम लिख रहे धरती पर?
जो उप जाते फल, फूल, अ,
जिन पर मानव जीवन निर्भर?

इस अमर लेखनी से प्रतिक्षण
मैं करता मधुर अमृत वर्षण,
जिससे मिट्टी के पुतलों में
भर जाते प्राण, अमर जीवन !

निर्माण कर रहा हूँ जग का
मैं जोड़ जोड़ मनुजों के मन,
मैं काट काट कटु घृणा कलह
रचता आत्मा का मनोभवन !

खर-कोमल शब्दों को चुन-चुन
मैं लिखता जन-जन के मन पर,—
मानव आत्मा का खाद्य प्रेम,
जिस पर है जग-जीवन निर्भर!

मैं जग-जीवन का शिल्पी हूँ,
जीवित मेरी वाणी के स्वर,
जन-मन के मांस-खंड पर मैं
मुद्रित करता हूँ सत्य अमर।

दो लड़के

मेरे आँगन में, (टीले पर है मेरा घर)
दो छोटे-से लड़के आजाते हैं अकसर;
नंगे तन, गदबदे, साँवले, सहज छबीले,
मिट्टी के मटमैले पुतले,—पर फुर्तीले!

जल्दी से, टीले के नीचे, उधर उतर कर
वे चुन ले जाते कूड़े से निधियाँ सुन्दर,—
सिगरेट के ख़ाली डिब्बे, पन्नी चमकीली,
फ़ीतों के टुकड़े, तस्वीरें नीली पीली
मासिक पत्रों के कवरों की; औ' बन्दर से
किलकारी भरते हैं, खुश हो-हो अंदर से!
दौड़ पार आँगन के फिर हो जाते ओझल
वे नाटे छः सात साल के लड़के मांसल!

सुन्दर लगती नग्न देह, मोहती नयन-मन,
मानव के नाते उर में भरता अपनापन!
मानव के बालक हैं ये पासी के बच्चे,
रोम रोम मानव, साँचे में ढाले सच्चे!

अस्थि-मांस के इन जीवों का ही यह जग घर,
आत्मा का अधिवास न यह, वह सूक्ष्म, अनश्वर!
न्यौछावर है आत्मा नश्वर रक्त-मांस पर,
जग का अधिकारी है वह, जो है दुर्बलतर।

वह्नि, बाढ़, उल्का, झंझा की भीषण भू पर
कैसे रह सकता है कोमल मनुज कलेवर !
निष्ठुर है जड़ प्रकृति, सहज भंगुर जीवित जन,
मानव को चाहिए यहाँ मनुजोचित साधन !

क्यों न एक हो मानव मानव सभी परस्पर
मानवता निर्माण करें जग में लोकोत्तर ?
जीवन का प्रासाद उठे भू पर गौरवमय,
मानव का साम्राज्य बने,—मानव हित निश्चय !

जीवन की क्षण-धूलि रह सके जहाँ सुरक्षित
रक्त मांस की इच्छाएँ जन की हों पूरित !
—मनुज प्रेम से जहाँ रह सकें,—मानव ईश्वर !
और कौन सा स्वर्ग चाहिए तुझे धरा पर ?

मानवपन

इस धरती के रोम रोम में
भरी सहज सुन्दरता,
इसकी रज को छू प्रकाश
बन मधुर विनम्र निखरता !
पीले पत्ते, टूटी टहनी,
छिलके, कंकर, पत्थर,
कूड़ा करकट सब कुछ भू पर
लगता सार्थक, सुन्दर !

प्रणत सदा से धरणी : इसका
चिर उदार वक्षस्थल
ज्योति तमस, हिम आतप का,
मधु पतझर का रंगस्थल !

जीवों की यह धात्री : इसकी
मिट्टी का उनका तन,
इस संस्कृत रज का ही प्रतिनिधि
हो सकता मानवपन !

जीव जनित जो सहज भावना
संस्कृति उससे निर्मित,
चिर ममत्व की मधुर ज्योति—
जिससे मानव उर ज्योतित !

रीति नीति वाणी विचार
केवल हैं उसकी प्रतिकृति,
जीवों के प्रति आत्म-बोध ही
मनुष्यत्व की परिणति !

विद्या, वैभव, गुण विशिष्टता
भूषण हों मानव के,
जीव प्रेम के बिना किंतु ये
दूषण हैं दानव के !

रक्त-मांस का जीव विविध
दुर्बलताओं से शोभित
मनुष्यत्व दुर्लभ सुरत्व से,—
निष्कलंकता पीड़ित !

व्याधि सभ्यता की है निश्चित
पूर्ण सत्य का पूजन,
प्राण हीन वह कला, नहीं
जिसमें अपूर्णता शोभन !

सीमाएँ आदर्श सकल,
सीमा विहीन यह जीवन,
दोषों से ही दोष शुद्ध है
मिट्टी का मानवपन !

गंगा की साँझ

अभी गिरा रवि, ताम्र कलश सा,
गंगा के उस पार,
क्लांत पांथ, जिह्वा विलोल
जल में रक्ताभ प्रसार!
भूरे जलदों से धूमिल नभ—
विहग-पंख-से बिखरे—
धेनु - त्वचा - से सिहर - रहे
जल में रोओं-से छितरे!

दूर, क्षितिज में चित्रित-सी
उस तरु माला के ऊपर
उड़ती काली विहग पाँति
रेखा-सी लहरा सुन्दर!
उड़ी आ रही हलकी खेवा
दो आरोही लेकर,
नीचे ठीक तिर रहा जल में
छाया-चित्र मनोहर!

शांत, स्निग्ध संध्या सलज्ज मुख
देख रही जल तल में,
नीलारुण अंगों की आभा
छहरी लहरी दल में!
झलक रहे जल के अंचल से
कंचु - जलद स्वर्ण - प्रभ,
चूर्ण कुन्तलों सा लहरों पर
तिरता घन ऊर्मिल नभ!

द्वाभा का ईषत् उज्ज्वल
कोमल तम धीरे घिर कर
दृश्य पटी को बना रहा
गंभीर, गाढ़, रँग भर-भर !
मधुर प्राकृतिक सुषमा यह
भरती विषाद है मन में,
मानव की सजीव सुंदरता
नहीं प्रकृति दर्शन में !

पूर्ण हुई मानव अंगों में
सुंदरता नैसर्गिक,
शत ऊषा संध्या से निर्मित
नारी प्रतिमा स्वर्गिक !
भिन्न भिन्न बह रही आज
नर नारी जीवन धारा,
युग युग के सैकत-कर्दम से
रुद्ध,—छिन्न सुख सारा !

गङ्गा का प्रभात

गलित ताम्र भव : भृकुटि मात्र रवि
रहा क्षितिज से देख,
गङ्गा के नभनील निकष पर
पड़ी स्वर्ण की रेख!
आर पार फैले जल में
घुल कर कोमल आलोक,
कोमलतम बन निखर रहा,
लगता जग अखिल अशोक!
नव किरणों ने विश्वप्राण में
किया पुलक संचार,
ज्योति जड़ित बालुका पुलिन
हो उठा सजीव अपार!
सिहर अमर जीवन कंपन से
खिल खिल अपने आप,
लहराने भर को लहराता
कोमल लहर कलाप!

सृजन शीलता से अपनी ही
हो ज्यों अवश, अकाम—
निरुद्देश्य जीवन धारा
बहती जाती अविराम!
देख रहा अनिमेष,—हो गया
स्थिर, निश्चल सरिता जल,
बहता हूँ मैं, बहते तट,
बहते तरु, क्षितिज, अवनि तल!

यह विराट् भूतों का भव
चिर जीवन से अनुप्राणित,
विविध विरोधी तत्वों के
संघर्षण से संचालित !
निज जीवन के हित असंख्य
प्राणी हैं इसके आश्रित,
मानव इसका शासक,—आतप,
अनिल, अन्न, जल शासित !

मानव-जीवन, प्रकृति-चलन में
चिर विरोध है निश्चित,
विजित प्रकृति को कर, उसने की
विश्व सभ्यता स्थापित !
देश, काल, स्थिति से मानवता
रही सदा ही बाधित,
देश, काल, स्थिति को वश में कर
करना है परिचालित !

क्षुद्र व्यक्ति को विकसित हो
अब बनना है जन-मानव,
सामूहिक मानव को निर्मित
करनी है संस्कृति नव !
मानवता के युग प्रभात में
मानव - जीवन - धारा
मुक्त अबाध बहे, मानव-जग
सुख स्वर्णिम हो सारा !

मूल्यांकन

विगत सत्य, शिव, सुन्दर करता
नहीं हृदय आकर्षित,
सभ्य, शिष्ट औ' संस्कृत लगते
मन को केवल कुत्सित!
संस्कृति, कला, सदाचारों से
भव-मानवता पीड़ित,
स्वर्ण - पींजड़े में बंदी है
मानव आत्मा निश्चित!

आज असुन्दर लगते सुन्दर
प्रिय पीड़ित, शोषित जन,
जीवन के दैन्यों से जर्जर
मानव-मुख हरता मन!
मूढ़, असभ्य, उपेक्षित, दूषित
भूके चिर उपकारक,
धार्मिक, उपदेशक, पंडित,
दानी हैं लोक-प्रतारक!
धर्म नीति औ' सदाचार का
मूल्यांकन है जन-हित,
सत्य नहीं वह, जनता से जो
नहीं प्राण-संबंधित!
आज सत्य, शिव, सुन्दर केवल
वर्गों में हैं सीमित,
ऊर्ध्वमूल संस्कृति को होना
अधोमूल है निश्चित!

उद्‌बोधन

इस विश्री जगती में कुत्सित
अंतर-चितवन से चुन चुन कर
सार भाग जीवन का सुन्दर
मानव ! भावी मानव के हित
जीवन पथ कर जाओ ज्योतित !

अक्षय, शुद्ध, अपाप-विद्ध जो
मानव उर का सत्य अपरिमित,
उसे रूप-जग में कर स्थापित
भव-जीवन कर जाओ निर्मित !
क्षुद्र, घृणित, भव-भेद-जनित
जो, उसे मिटा, नव-संघ भाव भर,
देश, काल औ' स्थिति के ऊपर
मानवता को करो प्रतिष्ठित !

इस कुरूप जगती में कुत्सित
अंतर-बाह्य-प्रकृति पर पा जय,
नव विज्ञान ज्ञान कर संचय,
मानव ! भावी मानव के हित
नव संस्कृति कर जाओ निर्मित !

खोलो

रुद्ध हृदय के द्वार,
—खोलो फिर इस बार !

मुक्त निखिल मानवता हो,
जीवन सौन्दर्य प्रसार,—
खोलो फिर इस बार !

युग युग के जड़ अंधकार में
बंदी जन - संसार,
रूढ़ि-पाश में बँधी मनुजता
करती पशु - चीत्कार !—
खोलो फिर इस बार !

निर्मम कर आघात मर्म में,
निष्ठुर तड़ित प्रहार
चूर्ण करो गत संस्कारों को,
लेओ प्राण उबार !—
खोलो फिर इस बार !

गूँज उठे जन-जन में जीवन
उर में प्रणय पुकार,
पुनः पल्लवित हो मानव-जग,
हो वसंत, पतझार !—
खोलो फिर इस बार !

मार्क्स के प्रति

दंतकथा, वीरों की गाथा, सत्य, नहीं इतिहास,
सम्राटों की विजय लालसा, ललना भृकुटि-विलास;
दैव नियति का निर्मम क्रीड़ा चक्र न वह उच्छृङ्खल,
धर्मान्धता, नीति, संस्कृति का ही केवल समर स्थल!
साक्षी है इतिहास, किया तुमने दुन्दुभि से घोषित,—
प्रकृति विजित कर, मानव ने की विश्व सभ्यता स्थापित!
विकसित हो, बदले जब जब जीवनोपाय के साधन,
युग बदले, शासन बदले, कर गत सभ्यता समापन!
सामाजिक सम्बन्ध बने नव, अर्थ-भित्ति पर नूतन,
नव विचार, नव रीति नीति, नव नियम, भाव, नव दर्शन!
साक्षी है इतिहास,—आज होने को पुनः युगान्तर,
श्रमिकों का शासन होगा अब उत्पादन यन्त्रों पर!
वर्ग हीन सामाजिकता देगी सबको सम साधन,
पूरित होंगे जन के भव जीवन के निखिल प्रयोजन!
दिग् दिगंत में व्याप्त, निखिल युग युग का चिर गौरव हर,
जन संस्कृति का नव विराट् प्रासाद उठेगा भू पर!
धन्य मार्क्स! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु-से प्रकट हुए प्रलयंकर!

भूत दर्शन

कहता भौतिकवाद, वस्तु जग का कर तत्वान्वेषण:—
भौतिक भव ही एक मात्र मानव का अंतर दर्पण!

स्थूल सत्य आधार, सूक्ष्म आधेय, हमारा जो मन,
बाह्य विवर्तन से होता युगपत् अंतर परिवर्तन!

राष्ट्र, वर्ग, आदर्श, धर्म, गत रीति नीति औ' दर्शन
स्वर्ण पाश हैं : मुक्ति योजना सामूहिक जन जीवन!

दर्शन युग का अंत, अंत विज्ञानों का संघर्षण,
अब दर्शन-विज्ञान सत्य का करता नव्य निरूपण!

नवोद्भूत इतिहास भूत सक्रिय, सकरण, जड़-चेतन
द्वन्द्व तर्क से अभिव्यक्ति पाता युग युग में नूतन!

अस्त आज साम्राज्यवाद, धनपति वर्गों का शासन,
प्रस्तर युग की जीर्ण सभ्यता मरणासन्न, समापन!

साम्यवाद के साथ स्वर्ण युग करता मधुर पदार्पण,
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिवादन!

संकीर्ण भौतिकवादियों के प्रति

हाड़ मांस का आज बनाओगे तुम मनुज समाज ?
हाथ पाँव संगठित चलावेंगे जग जीवन काज !

दया द्रवित होगए देख दारिद्र्य असंख्य तनों का ?
अब दुहरा दारिद्र्य उन्हें दोगे निरुपाय मनों का ?

आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता का रट नाम ?
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे तुम सँवार कर चाम ?

वस्तुवाद ही सत्य, मृषा सिद्धांतवाद, आदर्श ?
बाह्य परिस्थिति पर आश्रित अंतर जीवन उत्कर्ष ?

मानव ! कभी भूल से भी क्या सुधर सकी है भूल ?
सरिता का जल मृषा, सत्य केवल उसके दो कूल ?

आत्मा औ' भूतों में स्थापित करता कौन समत्व ?
बहिरंतर, आत्मा-भूतों से है अतीत वह तत्व !

भौतिकता, आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल,
व्यक्ति-विश्व से, स्थूल-सूक्ष्म से परे सत्य के मूल !

धनपति

वे नृशंस हैं : वे जन के श्रमबल से पोषित,
दुहरे धनी, जोंक जग के, भू जिनसे शोषित!
नहीं जिन्हें करनी श्रम से जीविका उपार्जित,
नैतिकता से भी रहते जो अतः अपरिचित!

शय्या की क्रीड़ा कन्दुक है जिनको नारी,
अहंमन्य वे, मूढ़, अर्थबल के व्यभिचारी!
सुरांगना, संपदा, सुराओं से संसेवित,
नर पशु वे : भू भार : मनुजता जिनसे लज्जित!

दर्पी, हठी, निरंकुश, निर्मम कलुषित, कुत्सित,
गत संस्कृति के गरल, लोक जीवन जिनसे मृत!
जग जीवन का दुरुपयोग है उनका जीवन,
अब न प्रयोजन उनका, अंतिम हैं उनके क्षण!

मध्य वर्ग

गत संस्कृति का दास : विविध विश्वास विधायक,
निखिल ज्ञान, विज्ञान नीतियों का उन्नायक!
उच्च वर्ग की सुविधा का शास्त्रोक्त प्रचारक,
प्रभु सेवक, जन वंचक वह, निज वर्ग प्रतारक!

भोग शील, धनिकों का स्पर्धी, जीवन-प्रिय अति,
आत्म वृद्ध, संकीर्ण हृदय, तार्किक, व्यापक मति!
पाप पुण्य संत्रस्त, अस्थियों का बहु कोमल,
वाक् कुशल, धी दर्पी, अति विवेक से निर्बल!

मध्यवर्ग का मानव, वह परिजन पत्नी-प्रिय,
यशकामी, व्यक्तित्व प्रसारक, पर हित निष्क्रिय!
श्रमजीवी वह, यदि श्रमिकों का हो अभिभावक,
नवयुग का वाहक हो, नेता, लोक प्रभावक!

कृषक

युग युग का वह भारवाह, आकटि नत मस्तक,
निखिल सभ्य संसार पीठ का उसके स्फोटक!
वज्र मूढ़, जड़ भूत, हठी, वृष बांधव कर्षक,
ध्रुव, ममत्व की मूर्ति, रूढ़ियों का चिर रक्षक!

कर जर्जर, ऋण ग्रस्त, स्वल्प पैत्रिक स्मृति भू-धन,
निखिल दैन्य, दुर्भाग्य, दुरित, दुख का जो कारण,
वह कुबेर निधि उसे,—स्वेद सिंचित जिसके कण,
हर्ष शोक की स्मृति के बीते जहाँ वर्ष क्षण!

विश्व विवर्तनशील, अपरिवर्तित वह निश्चल,
वही खेत, गृह-द्वार वही वृष, हँसिया औ' हल!
स्थावर स्थितियों का शिशु स्थावर स्थाणु कृषीबल,
दीर्घसूत्र, अति दुराग्रही, साशंक औ' वृषल!

है पुनीत संपत्ति उसे दैवी निधि निश्चित,
संततिवत् गो वृषभ, गुल्म, तृण, तरु चिर परिचित,
वह संकीर्ण, समूह-कृपण, स्वाश्रित, पर-पीड़ित,
अति निजस्व-प्रिय, शोषित, लुंठित, दलित, क्षुधार्दित!

युग युग से निःसंग, स्वीय श्रमबल से जीवित,
विश्व प्रगति अनभिज्ञ, कूप-तम में निज सीमित!
कर्षक का उद्धार पुण्य इच्छा है कल्पित,
सामूहिक कृषि काय-कल्प, अन्यथा कृषक मृत!

श्रमजीवी

वह पवित्र है : वह, जग के कर्दम से पोषित,
वह निर्माता : श्रेणि, वर्ग, धन, बल से शोषित !
मूढ़, अशिक्षित,—सभ्य शिक्षितों से वह शिक्षित,
विश्व उपेक्षित,—शिष्ट संस्कृतों से मनुजोचित !

दैन्य कष्ट कुण्ठित,—सुन्दर है उसका आनन,
गंदे गात वसन हों, पावन श्रम का जीवन !
स्नेह, साम्य, सौहार्द्र, पूर्ण तप से उसका मन,
वह संगठित करेगा भावी भव का शासन !

भूख प्यास से पीड़ित उसकी भद्दी आकृति
स्पष्ट कथा कहती,—कैसी इस युग की संस्कृति !
वह पशु से जघन्य मानव—मानव की है कृति !
जिसके श्रम से सिंची समृद्धों की पृथु संपति !

मोह संपदा अधिकारों का उसे न किंचित्,
कार्य कुशल यंत्री वह, श्रम पटुता से जीवित !
शीत ताप औ' क्षुधा तृषा में सदा संयमित,
दृढ़ चरित्र वह, कष्ट सहिष्णु, धीर, निर्भय चित !

लोक क्रांति का अग्रदूत, वर वीर, जनादृत,
नव्य सभ्यता का उन्नायक, शासक, शासित !
चिर पवित्र वह : भय, अन्याय, घृणा से पालित,
जीवन का शिल्पी,—पावन श्रम से प्रक्षालित !

घन नाद

ठङ्—ठङ्—ठन !
लौह नाद से ठोंक पीट घन
निर्मित करता श्रमिकों का मन,
ठङ्—ठङ्—ठन !
'कर्म-क्लिष्ट मानव-भव-जीवन,
श्रम ही जग का शिल्पि चिरंतन,'
कठिन सत्य जीवन की क्षण क्षण
घोषित करता घन वज्र-स्वन—
'व्यर्थ विचारों का संघर्षण,
अविरत श्रम ही जीवन साधन;
लौह काष्ट मय, रक्त मांस मय,
वस्तु रूप ही सत्य चिरंतन !

ठङ्—ठङ्—ठन !
अग्नि स्फुलिंगों का कर चुंबन
जाग्रत करता दिग् दिगंत घन,—
'जागो, श्रमिको, बनो सचेतन,
भू के अधिकारी हैं श्रमजन !
'मांस पेशियाँ हृष्ट, पुष्ट, घन,
बटी शिराएँ, श्रम-बलिष्ट तन,
भू का भव्य करेंगे शासन,
चिर लावण्यपूर्ण श्रम के कण।'
ठङ्—ठङ् ठन !

कर्म का मन

भव का जीवन मन का जीवन,
कार्यार्थी को है मन बंधन !

अवचेतन मन से होता रे,
चेतन मन संतत संचालित,
मन के दर्पण में भव की छवि,
रंजित होकर होती बिम्बित !

रूप जगत की प्रतिछाया यह
भाव-जगत मानस का निश्चित,
गत युग का मृत सगुण आज
मानव मन की गति करता कुण्ठित

अत: कर्म को प्रथम स्थान दो,
भाव जगत कर्मों से निर्मित !
निखिल विचार, विवेक, तर्क
भव रूप कर्म को करो समर्पित !

प्रथम कर्म, कहता जन-दर्शन
पीछे रे सिद्धांत, मन, वचन !

रूप का मन

निर्मित करो रूप का मन,—
रूप का मन!

भाव सत्य पीड़ित मानव,
मत धरो स्वप्न के चरण,
बाष्प लोक के योग्य तुम्हारा,
भाव सत्य विश्लेषण!

रूप जगत यह, रूप कर्म कर,
रूप सत्य कर चिंतन,
रूप करो निर्माण विश्व का,
भरो रूप भव से मन!

भाव भीत तुम, गत भावों के
पहने स्वर्णिम बंधन,
रूप हीन मृत भावों को
देते हो सत्य चिरंतन!

देश काल से सीमित
गत संस्कृतियों का संघर्षण,
नव्य रूप कर मुक्त
भव्य भव भाव करेगा धारण!

निर्मित करो रूप का नव मन
रूप तत्व कर दर्शन,

रूप भाव का मूल
रूप को भाव करो सब अर्पण !

मुक्त रूप का तत्व
बनेगा जगती का नव जीवन,
रूप मुक्ति ही भाव मुक्ति
यह तात्विक सत्यान्वेषण !

रूप पूजन

करो रूप पूजन भव मानव !
भाव पुष्प कर अर्पण,
धरो रूप चरणों में नव नव
तन, मन, जीवन, यौवन !

निखिल शक्ति बँध रूप पाश में
करती संसृति नर्तन,
रूप परिधि में मुक्त प्रकाशित
शत शत रवि, शशि उडुगन !

आज अलंकृत करो धरा को
रूप रङ्ग भर नूतन,
युग युग की चिर भाव राशि के
पहना वसन, विभूषण !

प्रकृति रूप इच्छा से उन्मद
करती सृजन सनातन,
रूप सृष्टि यह : भावों को दो
मधुर रूप परिरंभण !

सच है, जग जीवन विकास में
आते ऐसे युग क्षण,
जब मानव इस रूप-जगत का
करता सूक्ष्म निरूपण !

वह विश्लेषण युग देता
निर्माण शक्ति फिर नूतन,
अन्तर जग का बहिर्जगत में
होता जब परिवर्तन !

आज युगांतर होने को है
जगती तल में निश्चित,
नव मानवता की किरणों से
विश्व क्षितिज है ज्योतित !

नव्य रूप से करो भव्य मानव !
स्वरूप जग निर्मित,
अखिल अवनि खिल उठे
रूप मानवता से हो कुसुमित !

वरो रूप को हे नव मानव !
रच भव प्रतिमा जीवित,
अङ्ग अङ्ग में देश देश की
भाव राशि कर अर्पित !

जन जन की विच्छिन्न शक्ति हो
जग जीवन में विकसित,
युग युग की अतृप्त आकांक्षा
उर उर की परिपूरित !

रूप निर्माण

रम्य रूप निर्माण करो हे,
रम्य वस्त्र परिधान,
रम्य बनाओ गृह, जनपथ को,
रम्य नगर, जनस्थान!
रम्य सृष्टि हो रूप जगत की,
रम्य धरा शृङ्गार,
बाह्य रूप हो रम्य वस्तु का,
होंगे रम्य विचार!

रम्य रूप हो मानवता का,
अखिल मनोरम वेश,
भाषा रम्य मनुजता का मन,
वहन करे निःशेष!
भेद जनित माया, माया का,
रूप करो विन्यास,
मानव संस्कृति में विरोध डूबें,
हो ऐक्य प्रकाश!
रूप रचो भव मानवता का,
रूप भाव आधार,
रम्य रूप मानव समूह हो,
जीवन रूप विचार!

भूत जगत

जड़ चेतन हैं एक नियम के वश परिचालित,
मात्रा का है भेद, उभय हैं अन्योन्याश्रित!
भूत जगत की पावनता को करो न कलुषित,
निखिल जीव जग की सत्ता इससे परिपालित!

पावन हो भव धाम,—अनिल जल, स्थल, नभ पावन,
पावन हों गृह, वसन,—विभूषण, भाजन पावन!
हृदय-बुद्धि हो पावन, देह, गिरा, मन पावन,
पावन दिशि पल, खाद्य श्वास, भव जीवन पावन!

सुन्दर ही पावन, संस्कृत ही पावन निश्चय,
सुन्दर हो भू का मुख, संस्कृत जीवन-संचय!
सुन्दर भव-आलय, संस्कृत जड़-चेतन समुदय,
सुन्दर नव मानव, संस्कृत भव-मानव की जय!

जीवन मांस

मानवता का रक्त मांस
जग जीवन से चिर ओत प्रोत,
निखिल विचारों का बहता
इस अरुण रुधिर में जीवित स्रोत!

युग युग की चेतना अमर,
दिशि दिशि के जीवन का उल्लास,
रक्त मांस में देश देश की
संस्कृति का शाश्वत इतिहास!

कहाँ खोजने जाते हो
सुन्दरता औ' आनंद अपार?
इस मांसलता में है मूर्तित
अखिल भावनाओं का सार!

मांस नहीं नश्वर रज,
ज्योतित मांस नहीं जड़ जीव-विलास
अंतर बाह्य चतुर्दिक् है तम,
रूप मांस है अमर प्रकाश!

शत वसंत, शत ग्रीष्म, शरद का
मांस बीज में है आवास,
ईश्वर है यह मांस, पूर्ण यह,
इसका होता नहीं विनाश!

मांस मुक्ति है भाव मुक्ति,
औ' भाव मुक्ति जीवन उल्लास,
मांस मुक्ति ही लोक मुक्ति
भव जीवन का जो चरम विकास!

मांसों का है मांस, मानुषी मांस
करो इसका सम्मान,
निर्मित करो मांस का जीवन,
जीवन मांस करो निर्माण!

मानव पशु

मानव के पशु के प्रति
हो उदार नव संस्कृति !

युग युग से रच शत शत नैतिक बंधन
बाँध दिया मानव ने पीड़ित पशु तन !
विद्रोही हो उठा आज पशु दर्पित,
वह न रहेगा अब नव युग में गर्हित !
नहीं सहेगा रे वह अनुचित ताड़न,
रीति नीतियों का गत निर्मम शासन !
वह भी क्या मानव जीवन का लांछन,
वह, मानव के देव भाव का वाहन !

नहीं रहे जीवनोपाय तब विकसित,
जीवन यापन कर न सके सब इच्छित,
नैतिक सीमाएँ बहु कर निर्धारित,
जीवन इच्छा की जन ने मर्यादित !
मानव के कल्याण के लिए निश्चित
पशु ने अपनी बलि दी, देवों के हित,
जीवन के उपकरण अखिल कर अधिकृत
गत युग का पशु हुआ आज मनुजोचित !
देव और पशु, भावों में जो सीमित
युग युग में होते परिवर्तित, अवसित,
मानव पशु ने किया आज भव अर्जित
मानव देव हुआ अब वह सम्मानित !
मानव के पशु के प्रति
मध्य वर्ग की हो रति !

नारी

मुक्त करो नारी को मानव !
चिर बंदिनि नारी को,
युग युग की बर्बर कारा से,
जननि, सखी, प्यारी को !

छिन्न करो सब स्वर्ण पाश
उसके कोमल तन मन के,
वे आभूषण नहीं, दाम
उसके बंदी जीवन के !

पुरुष वासना को सीमा से
पीड़ित नारी जीवन,
नर नारी का तुच्छ भेद है
केवल युग्म विभाजन !

उसे मानवी का गौरव दे
पूर्ण सत्व दो नूतन,
उसका मुख जग का प्रकाश हो
उठे अंध अवगुण्ठन !

योनि मात्र रह गई मानवी
निज आत्मा कर अर्पण,
पुरुष प्रकृति की पशुता का
पहने नैतिक आभूषण !

नष्ट हो गई उसकी आत्मा,
त्वचा रह गई पावन,
युग युग से अवगुण्ठित गृहिणी
सहती पशु के बन्धन !

खोलो हे मेखला युगों की
कटि प्रदेश से, तन से !
अमर प्रेम हो बन्धन उसका,
वह पवित्र हो मन से !

अंगों की अविकच इच्छाएँ
रहें न जीवन पातक,
वे विकास में बनें सहायक,
होवें प्रेम प्रकाशक !

क्षुधा तृषा ही के समान
युग्मेच्छा प्रकृति प्रवर्तित,
कामेच्छा प्रेमेच्छा बनकर
हो जाती मनुजोचित !

क्षुधा कामवश गत युग ने
पशु बल से कर जन शासित
जीवन के उपकरण सदृश
नारी भी कर ली अधिकृत !

मुक्त करो जीवन संगिनि को,
जननि देवि को आदृत,
जग जीवन में मानव के सँग
हो मानवी प्रतिष्ठित !

प्रेम स्वर्ग हो धरा, मधुर
नारी महिमा से मंडित,
नारी मुख की नव किरणों से
युग प्रभात हो ज्योतित !

नर की छाया

पुरुषों की ही आँखों से
नित देख देख अपना तन,
पुरुषों ही के भावों से
अपने प्रति भर अपना मन,
लो, अपनी ही चितवन से
वह हो उठती है लज्जित,
अपने ही भीतर छिप छिप
जग से हो गई तिरोहित!

वह नर की छाया नारी!
चिर नमित नयन, पद त्रिजड़ित,
वह चकित, भीत हिरनी सी
निज चरण चाप से शंकित!
मानव की चिर सहधर्मिणि,
युग युग से मुख अवगुण्ठित,
स्थापित घर के कोने में
वह दीप शिखा सी कंपित!

करती वह जीवन यापन
युग युग से पशु सी पालित,
बंदिनी काम कारा की,
आदर्श नीति परिचालित!!

बंद तुम्हारे द्वार ?

बंद तुम्हारे द्वार ?
मुसकाती प्राची में ऊषा ले किरणों का हार,
विहँसी सरसी में सरोजिनी, सोई तुम इस बार ?
बंद तुम्हारे द्वार ?

मधु वन में जागा मलयानिल, भौंरों में गुञ्जार,
विहग कंठ में गान, कुसुम उर में सौरभ-उद्गार,
बंद तुम्हारे द्वार ?

प्राण ! प्रतीक्षा में प्रकाश औ' प्रेम बने प्रतिहार,
पथ दिखलाने को प्रकाश, तुमसे मिलने को प्यार,
बंद तुम्हारे द्वार ?

गीत, हर्ष के पंख मार, आकाश कर रहे पार,
भेद सकेगी नहीं हृदय प्राणों की मर्म पुकार ?
बंद तुम्हारे द्वार ?

आज निछावर सुरभि, खुला जग में मधु का भंडार,
दबा सकोगी तुम्हीं आज उर में जीवन का ज्वार ?
बंद तुम्हारे द्वार ?

सुमन के प्रति

भाव, वाणी या रूप ?
तुम क्या हो चिर मूक सुमन !
किसके प्रतिरूप ?
मौन सुमन !
सुन्दरता से अनिमिष चितवन
छू कोमल मर्मस्थल
मूक सत्व के भेद सकल
कह देती, (खुल दल पर दल)—
सहज समझ लेता मन !...
विजय रूप की सदा भाव पर,
भाव रूप पर नर्भर !
मैं अवाक हूँ तुम्हें देखकर
मौन रूपधर !
रूप नहीं है नश्वर !—
सत्ता का वह पूर्ण, प्रकृत स्वर,
सुन्दर है वह,......अमर !

कवि !....

हे राजनीतिविद्, अर्थविज्ञ !
रच शत शत वाद, विवाद, तंत्र,
परतंत्र किया तुमने मानव,
तुम बना न सके उसे स्वतंत्र !

हे दर्शनज्ञ, शत तर्कों से,
सच्छास्त्रों से पा गहन ज्ञान,
तुम भी न दे सके मानव को
उसकी मानवता का प्रमाण !

हे चित्रकार, ले रंग तूलि,
भर रूप रेख, छायाभ अंग,
चित्रित न कर सके मानव में
तुम मानवता के रूप रंग !

गायक, पा कोमल, मधुर कंठ,
रच वाद्य ताल, आलाप, तान,
मानव उर तुम मानव उर में
लय कर न सके, गा मर्म गान !

हे शिल्पकार वर ! कठिन धातु,
जड़ प्रस्तर में भर अमर प्राण
दे सके नहीं मानव जग को
तुम मानवता का प्रकृत मान !

कवि, नव युग की चुन भाव राशि,
नव छन्द, आभरण, रस विधान,
तुम बन न सकोगे जन मन के
जाग्रत भावों के गीत प्राण ?

प्रकाश !

आओ, प्रकाश ! इस युग युग के
अवगुण्ठन से मुख दिखलाओ,
आओ हे, मानव के घट के
पट खोल मधुर श्री बरसाओ !

आओ, जीवन के आँगन में
स्वर्णिम प्रभात जग के लाओ,
मानव उर के प्रस्तर युग के
इस अंध तमस को बिखराओ !

विज्ञान ज्ञान की शत किरणें
जनपथ में बरसाते आओ,
मुरझाए मानव मुकुलों को
छूकर नव छबि में विकसाओ !

दिशि पल के भेद त्रिभेदों को
तुम डुबा एकता में, आओ,
नव मूर्तिमान मानवता बन
जन जन के मन में बस जाओ !

आम्र विहग !

हे आम्र-विहग !—
तुम ताम्र सुभग
नव पर्णों में
छिपकर, उड़ेलते कर्णों में
मंजरित मधुर
स्वर-ग्राम प्रचुर !

उन्मुक्त नील...
तुम पंख ढील,
उड़ उड़ सलील
हो जाते लय
निःसीम शांति में चिर सुखमय;—
जब नीड़-निलय में रुद्ध - हृदय
हो उठता पीड़ातुर अतिशय !

फिर आम्र-विहग !
छिप ताम्र सुभग
नव पर्णों में
बरसाते आकुल कर्णों में
मंजरित मधुर
स्वर-गीत विदुर !

मैं भी प्रसार
अपने विचार
भावना-कल्पना पर अपार,
नि:सीम विश्व में हो विलीन

गाता नवीन
मधु के गाने,

जग में नव जीवन बरसाने,
मुरझा मानव-उर विकसाने!

हे आम्र विहग!
तुम सुनो सजग,—
जग का उपवन
मानव जीवन
है शिशिर-त्रस्त
बहु व्याधि ग्रस्त!

ये जीर्ण, शीर्ण, चिर दीर्ण पर्ण
जो स्रस्त, ध्वस्त, श्री-हत, विवर्ण
क्षय हों समस्त,
युग सूर्य अस्त!

ये राष्ट्र वर्ग
बल शक्ति भर्ग,
बहु जाति-पाँति,
कुल वंश ख्याति,
द्रुत हों विनष्ट सब नरक स्वर्ग!

विश्वास अंध,
संघर्ष द्वंद्व,
बहु तर्कवाद,
उर के प्रमाद,
गत रूढ़ि रीति
मृत धर्म नीति
ये हैं जगती की ईति भीति!

हों अंत
दैन्य जग के दुरंत,
आवे वसंत,
जीवन दिगंत
फिर से हो स्मित कुसुमित अनंत !

हों नग्न भग्न
आनंद मग्न,
संहार श्रांत
निर्माण लग्न !

सब क्षुधा-क्षुब्ध
कामना लुब्ध
हों तृप्त दृप्त
जग कार्य लिप्त !

अज्ञान चूर्ण
हों ज्ञान पूर्ण,
मानव समूह
हो एक व्यूह !

जग के सब भेद-भाव हों लय,
जीवन की बाधाएँ हों क्षय,
जय हो, मानव जीवन की जय !

उन्मेष

मौन रहेगा ज्ञान,
स्तब्ध निखिल विज्ञान !

क्रांति पालतू पशु-सी होगी शांत,
तर्क बुद्धि के वाद लगेंगे भ्रांत !

राजनीति औ' अर्थशास्त्र
होंगे संघर्ष-परास्त !

धर्म, नीति, आचार—
रुँधेगी सब की क्षीण पुकार !

जीवन के स्वर में हो प्रकट महान
फूटेगा जीवन रहस्य का गान !
क्षुधा, तृषा औ' स्पृहा, काम से ऊपर,
जाति, वर्ग औ' देश, राष्ट्र से उठकर,
जीवित स्वर में, व्यापक जीवन गान
सद्य करेगा मानव का कल्याण !

अनुभूति

रक्त-मांस की देह बन गई
जीवन-इच्छा निर्भर,
मधुर भावना, मदिर कल्पना
रुधिर-शिराएँ सुंदर!

रिक्त पूर्ण हो, शून्य सर्व,
जीवन से आज गया भर,
निश्चल मरण स्पृहा से चंचल
कँप कँप उठता थर्-थर्!

तमस नयन की तारा बन
चितवन करता आलोकित!
गत अभाव बन गए भाव
हो लोक-प्रेम संपोषित!

अखिल अमंगल दैन्य भूलकर
वैर विरोध, विनत-फन,
मंत्र-मुग्ध फणियों-से करते
जीवन-स्वर में नर्तन!

भव संस्कृति

तुम हरित-कंचु,
सित ज्योति किरण छबि वसना,
भव संस्कृति की नव प्रतिमा !

निर्धन समृद्ध, शासक शासित,
तुमको समान संस्कृत प्राकृत
गत धर्म कर्म, मृत रूढ़ि रीति तम अशना,
नव मानवता की महिमा !

संहार मग्न तुम सृजन लग्न,
कर राष्ट्र वर्ग बल भेद भग्न
भरती समत्व जगती में, तुम दिशि-रशना,
नव युग की गौरव गरिमा !

कर देश काल औ' प्रकृति विजित,
विज्ञान ज्ञान इतिहास ग्रथित,
मानव की विश्व विजय से तुम स्मित-दशना
पृथ्वी की स्वर्ग मधुरिमा !

हरीतिमा

हँसते भू के अँग अँग,
हरित हरित रँग !

दूर्वा पुलकित भूतल
नवोल्लसित तृण तरु दल
इंगित करते चंचल—
जीवन का जीवित रँग
हरित हरित रँग !

श्यामल, कोमल, शीतल
लोचन-प्रिय, प्राणोज्वल,
तन पोषक, मन संबल,
सजल सिंधु शोभित रँग
हरित हरित रँग !

हरित वसन, तन छबि सित,
जग जीवन प्रतिमा नित
हरती मानव का चित;
भव संस्कृति भावित रँग,
हरित हरित रँग !

प्रकृति के प्रति

हार गई तुम
प्रकृति !
रच निरुपम
मानव-कृति !

निखिल रूप, रेखा, स्वर
हुए निछावर
मानव के तन, मन पर !

धातु, वर्ण, रस-सार,
बने अस्थि, त्वच, रक्त-धार,
कुसुमित अंग-उभार !

सुंदरता, उल्लास,
छाया, गंध, प्रकाश,
बने रूप-लावण्य विकास,
नव यौवन-मधुमास !

जीवन रण में प्रतिक्षण
कर सर्वस्व समर्पण,
पूर्ण हुई तुम, प्रकृति !
आज बन मानव की कृति !

द्वन्द्व

शीत ताप,
दिन रात,
सुख दुख,
ह्रास विकास,
जीवन के ही अंश-भाग !
इनके साथ बढ़ो, मानव !
जड़ प्रकृति तुम्हारी अवयव !

सहन करो चुपचाप
द्वन्द्वों के आघात,
जीवन से होओ न विमुख !
बढ़ो वृक्ष-से अनायास
तुम सीख राग, फल-त्याग !
रहो साथ भव के, भव-मानव !
भाग तुम्हारा ही भव !

राग साधना

जीवन-तंत्री आज सजाओ
अमर राग तारों से,
गूँज उठें नभ धरा
प्रेम की स्वर्गिक झंकारों से !

राग-साधना करो मधुर
उर-उर के अखिल मिला सुर,
प्रतिध्वनित हो राग
हृदय से, रोओं के द्वारों से !

राग विश्व का जीवन,
संसृति का है सार सनातन,
अभिव्यक्त हो राग,
भाव, वाणी औ' आचारों से !
जीवन तंत्री आज सजाओ
प्रणय राग तारों से !

रूप सत्य

मुझे रूप ही भाता !
प्राण ! रूप ही मेरे उर में
मधुर भाव बन जाता !
मुझे रूप ही भाता !

जीवन का चिर सत्य
नहीं दे सका मुझे परितोष,
मुझे ज्ञान से वस्तु सुहाती,
सूक्ष्म बीज से कोष !

सच है जीवन के वसंत में
रहता है पतझार,
गंध वर्णमय कलि-कुसुमों का
पर ऐश्वर्य अपार !

राशि राशि सौन्दर्य, प्रेम,
आनन्द गुणों का द्वार,
मुझे लुभाता रूप रंग
रेखा का यह संसार !

मुझे रूप ही भाता !
प्राण ! रूप का सत्य
रूप के भीतर नहीं समाता !
मुझे रूप ही भाता !

मुझे स्वप्न दो

मुझे स्वप्न दो, मुझे स्वप्न दो !
हे जीवन के जागरूक !
जीवन के नव नव मुझे स्वप्न दो ?

स्वप्न-जागरण हो यह जीवन ,
स्वप्न-पुलक-स्मित तन,मन, यौवन,
मेरे स्वप्नों के प्रकाश में
जग का अंधकार जावे सो !

वस्तु-ज्ञान से ऊब गया मैं,
सूखे मरु में डूब गया मैं ,
मेरे स्वप्नों की छाया में
जग का वस्तु सत्य जावे खो !

शिशिर शयित जग जीवन वन में
हों पल्लवित स्वप्न नव, क्षण में ,
मेरे कार्यों में, वाणी में
नव नव स्वप्नों का गुंजन हो !

हे जीवन के जागरूक !
भव जीवन के नव मुझे स्वप्न दो !

मन के स्वप्न

सत्य बनाओ, हे,
मेरे मन के स्वप्नों को
सत्य बनाओ!

आज स्वप्न को सत्य,
सत्य को स्वप्न बना नव सृष्टि बसाओ!
निखिल ज्ञान को कर्म,
कर्म को ज्ञान बना भव मूर्ति सजाओ!
आज विश्व को व्यक्ति,
व्यक्ति को विश्व बना जग-जीवन लाओ!

सत्य बनाओ, हे,
मेरे जीवन-स्वप्नों को
सत्य बनाओ!

आज अखिल विज्ञान, ज्ञान को
रूप, गंध, रस में प्रकटाओ!
आत्मा की निःसीम मुक्ति को
भव की सीमा में बँधवाओ!
जन की रक्त-मांस इच्छा को
मधुर अन्न-फल में उपजाओ!

सत्य बनाओ, हे
मानव उर के स्वप्नों को
सत्य बनाओ!

जीवन स्पर्श

क्यों चंचल, व्याकुल जन ?
फूट रहा मधुवन में जो सौन्दर्योल्लास ,
कलि कुसुमों में राग-रंगमय शक्ति-विकास ,
आकुल उसी के लिए जन-मन !

दौड़ रही रक्तिम पलाश में जीवन-ज्वाल ,
आम्र-मौर में मदिर गंध, तरुओं में तरुण प्रवाल;
विहग-युग्म हो विह्वल सुख से आप
पंखों से प्रिय पंख मिला करते हैं प्रेमालाप—

अखिल विघ्न, भय, बाधाएँ कर पार
शीत, ताप, झंझा के सह बहु बार,
कौन शक्ति सजती जीवन का वासंती श्रृंगार ?

सभी उसी के लिए विकल मन !
उसी शक्ति का पाने जीवन स्पर्श
रोम रोम में भरने विद्युत हर्ष,
चिर चंचल, व्याकुल जन !

मधु के स्वप्न

रक्त पलाश ! रक्त पलाश !

सखे, मुझे दोगे सिंदूर के पुष्पों की ज्वाला का हास ?
आज उल्लसित धरा, पल्लवित विटपों में बहुवर्ण विकास,
पीपल, नीम, अशोक, आम्र से फूट रहा हरिताभ हुलास ;
गीत निरत हैं युवक, नृत्य रत युवती-जन स्मित मुख, सविलास,
फिर भी स्वप्न नहीं आते उड़ उड़ सुख के पंखों में पास !

रक्त पलाश ! रक्त पलाश !

मुझे चाहिए अब जन-जन के जीवन में ही नव मधुमास !
जन जीवन से आज चाहता हूँ पाना जीवन उल्लास,
तुम मुझको दोगे जीवन की ज्वाला का जाज्वल्य प्रकाश ?

प्रिय कचनार ! प्रिय कचनार !

मुझे बिना पत्रों की पुष्पों की डाली दोगे उपहार ?
सुन्दर मधुऋतु, सुन्दर है गुंजित दिगंत का हरित प्रसार,
ताम्र, रजत, मरकत, विद्रुम के विविध किसलयोंका मृदु-भार;
सुन्दर सलिल समीर आज, सुन्दर लगता नभ का विस्तार,
सुन्दर निखिल धरित्री, सुन्दर खग-मृग युग्मों का अभिसार !

प्रिय कचनार ! प्रिय कचनार !

जन मन की आकांक्षाओं का पर उन्मद सौन्दर्य अपार !
आज बसाऊँगा मैं फिर से घर-घर स्वप्नों का संसार !
मुझे गूँथने दोगे अपनी स्वर्ण-रजत कलियों का हार ?

आम्र रसाल ! ताम्र रसाल !

मधुपों से गुंजरित मुझे दोगे न मंजरित अपनी डाल ?
आज तुम्हारे अंग-अंग से फूट रही नव मधुकी ज्वाल,
ईंगुर के पर्णों में दिशि दिशि नृत्य कर रहा स्वर्ण सकाल;
मञ्जरियों के मदिर शरों से जर्जर जड़-चेतन इस काल,
बौरों की उन्मद सुगंध पी अंध हुई भौंरों की माल !

आम्र रसाल ! ताम्र रसाल !

कोकिल की आकुल ध्वनि सुन लद उठे पल्लवों से वन-शाल,
आज लुभाऊँगा मैं जग को बुन-बुन नव स्वप्नों का जाल !
सखे ! मुझे दोगे स्वप्नों से स्वर्ण मञ्जरित अपनी डाल ?

पलाश !

मरकत वन में आज तुम्हारी नव प्रवाल की डाल
जगा रही उर में आकुल आकांक्षाओं की ज्वाल !
पीपल, चिलबिल, आम्र, नीम की पल्लव-श्री सुकुमार ,
तुम्हीं उठाए हो पर वसुधा का मधु-यौवन-भार !
वर्ण वर्ण की हरीतिमा का वन में भरा विकास ,
पर नव मधु की निखिल कामनाओं के तुम उच्छ्वास !
शत मधु पुष्पों के रंगों की रत्नच्छटा, पलाश !
प्रकट नहीं कर सकती यह वैभव पुष्कल उल्लास !

स्वर्ण मञ्जरित आम्र आज, औ' रजत ताम्र कचनार ,
नील कोकिला की पुकार है, पीत भृंग गुंजार !—
वर्ण स्वरों से मुखर तुम्हारे किंतु मौन अंगार
यौवन के नव रक्त तेज का जिन में मदिर उभार !
हृदय रुधिर ही अर्पित कर मधु को, अपर्ण-श्री शाल !
तुमने जग में आज जला दी दिशि दिशि जीवन-ज्वाल !

पलाश के प्रति

प्राप्त नहीं मानव जग को यह मर्मोज्ज्वल उल्लास
जो कि तुम्हारी डाल डाल पर करता सहज विलास !
आज प्रलय-ज्वाला में ज्यों गल गए विश्व के पाश,
जीवन की हिल्लोल लोल उमड़ी छूने आकाश !
आकांक्षाएँ अखिल अवनि की हुईं पूर्ण उन्मुक्त,
यह रक्तोज्ज्वल तेज धरा के जीवन के उपयुक्त !
उद्भिज के जीवन-विकास में हुआ नवीन प्रभात,
तरुओं का हरितांधकार हो उठा ज्योति-अवदात !

नव जीवन का रुधिर शिराओं में कर वहन, पलाश !
तृण-तरु जग से मानव-जग में तुमने भरा प्रकाश !
यह शोभा, यह शक्ति, दीप्ति यह यौवन की उद्दाम
भरती मन में ओज, दृगों को लगती है अभिराम !
जीवन की आकांक्षाओं का यह सौन्दर्य अमन्द
मानव भी उपभोग कर सके मुक्त, स्वस्थ आनन्द !

कैलिफ़ोर्नियाँ पॉपी

कैसा प्रकाश से प्रेम तुम्हें,
छू स्वर्ण-रजत किरणें प्रभात
पीले सुफ़ेद सौ फूलों में
तुम खिल खिल पड़तीं पुलक गात !

जड़ वृन्त-मूल ! उड़ती होतीं
तुम तितली-सी सुख से उन्मुख,
पृथ्वी के हों ये डाल पात,
पर पार्थिव नहीं तुम्हारा सुख !

बंधन में भी हो सहज मुक्त
तुम, इसीलिए उड़कर क्षण में,
निज सुख की ही अतिशयता में
हो समा गई मेरे मन में !

बदली का प्रभात

निशि के तम में झर झर
हलकी जल की फुही
धरती को कर गई सजल !

अँधियाली में छन कर
निर्मल जल की फुही
तृण तक को कर उज्वल !...

बीती रात,—
धूमिल सजल प्रभात
वृष्टि शून्य, नव स्नात !
अलस उनींदा-सा जग,
कोमलाभ, दृग-सुभग !

कहाँ मनुज को अवसर
देखे मधुर प्रकृति-मुख ?
भव अभाव से जर्जर
प्रकृति उसे देगी सुख ?

दो मित्र

उस निर्जन टीले पर
दोनों चिलबिल
एक दूसरे से मिल,
मित्रों से हैं खड़े,
मौन, मनोहर !

दोनों पादप,
सह वर्षातप
हुए साथ ही बड़े,
दीर्घ सुदृढ़तर ?

पतझर में सब पत्र गए झर,
नग्न, धवल शाखों पर
पतली, टेढ़ी टहनी अगणित
शिरा-जाल-सी फैली गुम्फित,
तरुओं की रेखा-छबि कम्पित
भू पर कर छायांकित !

नील निरभ्र गगन पर
चित्रित-से दो तरुवर
आँखों को लगते हैं सुंदर
मन को सुखकर !

झंझा में नीम

सर् सर् मर् मर्
रेशम के से स्वर भर,
घने नीम दल
लंबे, पतले, चंचल,
श्वसन-स्पर्श से
रोमहर्ष से
हिल हिल उठते प्रतिपल !

वृक्ष शिखर से भू पर
शत शत मिश्रित ध्वनि कर
फूट पड़ा, लो, निर्झर
मरुत,—कम्प्र, अर !...
झूम झूम, झुक झुक कर,
भीम नीम तरु निर्भर
सिहर सिहर थर् थर् थर्
करता सर् मर्
चर् मर् !

लिप-पुत गए हरित दल
मर्मर में हो ओझल,
वायु वेग से अविरल
धातु-पत्र-से बज कल !
खिसक, सिसक, साँसे भर,
भीत, पीत, कृश, निर्बल,
नीम दल सकल
झर झर पड़ते पल पल !

ओस के प्रति

किस अकलुष जग से उतरे
तुम प्रतनु ओस !
तृण, कलि, कुसुम अधर पर बिखरे ?
किसने तुम्हें सजाया,
सुंदर, सुघर बनाया ?
रजत-बाष्प की सुभग
जलद-सीपी ने ?
ऐसी आभा देखी नहीं किसी ने !
सस्मित तुम से है प्रभात-जग,
स्वर्गिक मोती, अतुल कोष !

किसकी यह कल्पना ?
तुम्हें जो दिया बना,
उज्वल,
कोमल,
चंचल,
निर्मल, निर्दोष !

चटुल अनिल ने तुम्हें तोल
सब को समान कर गोल गोल,
शशि-छबि से भर
तुम को सुन्दर,
लुड़काया भू के पलकों पर,
हे स्वप्न-सुघर !
तुम पर सहस्र रवि न्योछावर !

ओस के प्रति

स्वर्गीय तुम्हारा लोल-लास,
जीवन के चल-पल का हुलास,
निज लघु सत्ता का कर विकास
तुम बने वाष्प आकाश !

ओऽस !
उर-परितोष !
ओ स्पर्श-शीत !
छवि-गीत
ओस !

ओस बिन्दु

ओस बिन्दु ! लघु ओस बिन्दु !
बहु नीले, पीले, हरे, लाल,
चंचल ताराओं-से जल जल,
फैलाते शीतल, सजल ज्वाल !

कलरव करते, किलकार, रार
ये मौन-मूक,—तृण तरु दल पर,
तकते अपलक, निश्चल सोए,
उड़ उड़ पँखड़ियों पर सुंदर !

ये पक्षी, मधुमक्खी, तितली,
जुगनू, मछली, रवि, ऋक्ष, इंदु,
निज नाम-रूप खो, जान। बूझ,
सब बने हुए हैं ओस-बिन्दु !

जलद

तूल जलद, ऊर्ण जलद,
तूम घूम जल पूर्ण जलद,
कात मसृण जल-सूत
भू पट पर जीमूत
हरित काढ़ते तृण, तरु, छद !

स्तनित जलद, तड़ित जलद,
संसृति को कर चकित जलद,
इंद्रचाप रँग चित्र,
गज मृग रूप विचित्र
बनते रवि-शशि तरी सुखद !

धीर जलद, तूर्ण जलद,
श्वेत श्याम छबि पूर्ण जलद,
शिखी नृत्य पर लुब्ध,
दादुर ध्वनि से क्षुब्ध,
विरहिणि कृषि के दूत फलद !

अनामिका के कवि

श्री सूर्यकांत त्रिपाठी के प्रति

छंद बंद ध्रुव तोड़, फोड़कर पर्वत कारा
अचल रूढ़ियों की, कवि, तेरी कविता धारा
मुक्त, अबाध, अमंद, रजत निर्झर सी निःसृत,—
गलित, ललित आलोक राशि, चिर अकलुष अविजित !

स्फटिक शिलाओं से तूने वाणी का मंदिर
शिल्पि, बनाया,—ज्योति-कलश निज यश का धर चिर !
शिलीभूत सौंदर्य, ज्ञान, आनंद अनश्वर
शब्द शब्द में तेरे उज्वल जड़ित हिम शिखर !
शुभ्र कल्पना की उड़ान, भव-भास्वर कलरव ,
हंस, अंश वाणी के, तेरी प्रतिभा नित नव !

जीवन के कर्दम से अमलिन मानस सरसिज
शोभित तेरा, वरद शारदा का आसन निज !
अमृत पुत्र कवि, यशःकाय तव जरामरणजित् ,
स्वयं भारती से तेरी हृत्तंत्री झंकृत !

आचार्य द्विवेदी के प्रति

(१)

भारतेंदु ने जिसकी अक्षय अमर नींव पर
प्रथम शिला का गौरव स्थापित किया पूर्वतर,
कुशल शिल्पि बहु विविध कीर्ति स्तंभों से सुन्दर
महिमा सुषमा जिसे दे गए, स्तुत्य यत्न कर;

भारत की वाणी का वह भव्योच्च सौधवर
अंतर्नयनों में क्या, हे आचार्य, पूर्णतर
उद्भासित हो उठा आपके दिव्य रूप धर?
ज्योति-विचुम्बित, स्वीय कीर्ति का स्वर्ण कलश वर
जो पहले ही आप रख गए अग्र शिखर पर!

आर्य, आपके मनःस्वप्न को ले पलकों पर
भावी चिर साकार कर सके रूप रंग भर;
दिशि दिशि की अनुभूति, ज्ञान, बहु भाव निरन्तर,
उसे उठावें युग युग के सुख, दुःख अनश्वर,
आप यही आशीर्वाद दें, देव यही वर!

आचार्य द्विवेदी के प्रति

(२)

भारतेंदु कर गए भारती की वीणा निर्माण
किया अमर स्पर्शों ने जिसका बहुविधि स्वर-संधान,
निश्चय, उसमें जगा आपने प्रथम स्वर्ण झङ्कार
अखिल देश की वाणी को दे दिया एक आकार!

पंखहीन थी क्षुब्ध कल्पना, मूक कंठगत गान!
शब्द शून्य थे भाव; रुद्ध प्राणों से वंचित प्राण!
सुख दुख की प्रिय कथा स्वप्न, बंदी थे हृदयोद्गार!
एक देश था सही, एक था क्या वाणी व्यापार?

वाग्मि! आपने मूक देश को कर फिर से वाचाल,
रूप रङ्ग से पूर्ण कर दिया जीर्ण राष्ट्र कंकाल!
शत कंठों से फूट आपके शतमुख गौरव गान
शत शत युग स्तंभों पर तानें स्वर्णिम कीर्ति वितान,
चिर स्मारक सा उठ युग युग में भारत का साहित्य
आर्य, आपके यशःकाय को धरे सुरक्षित नित्य!

कुसुम के प्रति

झर गए हाय, तुम कांत कुसुम !
सब रूप रंग दल गए बिखर,
रह सके न चारु-चिरंतन तुम,
जीवन की मधु-स्मिति गई बिसर !

चुपके-से झर, तुमने फल को
निज सौंप दिया जीवन, यौवन,
क्षण भर जो पलकों पर झलका
वह मधु का स्वप्न न रहा स्मरण !

चिर पूर्ण नहीं कुछ जीवन में
अस्थिर है रूप-जगत का मद,
बस आत्म-त्याग, जीवन-विनिमय
इस संधि-जगत में है सुखप्रद !

करुणा है प्राण-वृंत जग की,
अवलंबित जिस पर जग-जीवन,
भर देती चिर स्वर्गिक करुणा
जीवन का खोया सूनापन !

करुणा-रंजित जीवन का सुख,
जग की सुन्दरता अश्रु-स्नात,
करुणा ही से सार्थक होते
चिर जन्म-मरण, संध्या-प्रभात !

क्रांति

तुम अंधकार, जीवन को ज्योतित करती,
तुम विष हो, उर में मधुर सुधा सी झरती!
तुम मरण, विश्व में अमर चेतना भरती,
तुम निखिल भयंकर, भीति जगत की हरती!

तुम शून्य, अतुल ऐश्वर्य सदा बरसाती,
अपरूप, चतुर्दिक सुन्दरता सरसाती!
निष्ठुर निर्मम, क्षुद्रों को भी अपनाती,
तुम दावा, वन को हरित भरित कर जाती!

तुम चिर विनाश, नव सृजन गोद में लाती,
चिर प्राकृत, नव संस्कृति के ज्वार उठाती!
तुम रुद्र, प्रलय-तांडव में ही सुख पाती,
जीवन वसंत तुम, पतझड़ बन नित आती!

जीवन-तम

आज अखिल आलोक बन गया
जीवन का घन तमस अपार,
किरण-जाल-सा फैला निर्मल
अँधियाली का नीला ज्वार!
निखिल वस्तुओं का घनत्व यह,
रूपों का आकार-प्रकार,
सुंदरता, आनंद, मधुरिमा,
सकल गुणों का उज्वल सार!

मृत्स्ना-सा यह अंधकार,
चिर चेतन बीजों से उर्वर,
इसके रोओं में अंतर्हित
लोकों के रहस्य सुंदर!
निखिल सृष्टि के मूल इसीमें,
जग के पत्र, पुष्प बहु फल,
रूप, रंग, रस, पतझर-मधु,
जीवन की हरियाली मांसल!

आभाओं की है आभा
जीवन का अंधकार अविकार,
इसके कण-कण में हैं ज्योतित
सुखमा के असंख्य संसार!
अंतर का आलोक बन गया
यह जीवन-तम आज उदार,
सूक्ष्म रजत किरणों सा फैला
अँधियाली का नीला भार!

आओ !

आओ, मेरे स्वर में गाओ।
जीवन के कर्कश अपस्वर !
मेरी वंशी में लय बन जाओ !

अहंकार बन, राग द्वेष बन,
काम क्रोध भय विघ्न क्लेश बन,
शत छिद्रों से फूट फूट शत
निःश्वासों से मधु बरसाओ !

हे दूषित, हे कलुषित, गर्हित,
हे खंडित, हे त्यक्त, उपेक्षित,
मेरे उर में चिर पावन बन,
संगति, सत्व, पूर्णता पाओ !

बन विरोध संघर्षण में बल,
रह विनाश संशय में निश्चल,
बन तुम चिर विश्वास-शक्ति,
भव रोदन को संगीत बनाओ !

कृष्ण घन !

मुसकाओ हे भीम कृष्ण घन !
गहन भयावह अंधकार को
ज्योति-मुग्ध कर चमको कुछ क्षण !

दिग् विदीर्ण कर, भर गुरु गर्जन,
चीर तड़ित से अंध आवरण,
उमड़ घुमड़ घिर झूम झूम हे
बरसाओ नव जीवन के कण !

घूम घूम छा निर्भर अंबर,
भूल भूल झंझा झोंकों पर,
हे दुर्दम उद्दाम, हरो भव ताप दाप,
अभिमत कर सिंचन !

इंद्रचाप से कर दिशि चित्रित,
बर्हभार से केकी पुलकित,
हरित भरित हे करो धरणि को
हो करुणार्द्र, घोर वज्र स्वन !

निश्चय

संघर्षों में शांति बनूँ मैं !
अंधकार में पड़ जीवन के
अंधकार की कांति बनूँ मैं !

जग जीवन के ज्वारों में बह ,
कोमल प्रखर प्रहारों को सह ,
भव के क्रंदन किलकारों में
हँसमुख नीरव क्रांति बनूँ मैं !

घृणा उपेक्षा में रह अविचल ,
निंदा लांछन से बन उज्वल ,
त्रुटियों से ज्योतित कर निज पथ
जन-सेवा की श्रांति बनूँ मैं !

झेल निराशा कटु निष्फलता ,
दैन्य, स्वभाव जनित दुर्बलता ,
आगे बढ़ूँ धीर एकाकी ,
भाग्य चक्र की भ्रांति बनूँ मैं !

खोज

आज मनुज को खोज निकालो !
जाति वर्ण संस्कृति समाज से
मूल व्यक्ति को फिर से चालो !

देश राष्ट्र के विविध भेद हर,
धर्म नीतियों में समत्व भर,
रूढ़ि रीति गत विश्वासों की
अंध यवनिका आज उठालो !

भाषा भूषा के जो भीतर,
श्रेणि वर्ग से मानव ऊपर,
अखिल अवनि में रिक्त मनुज को
केवल मनुज जान अपनालो !

राजा प्रजा, धनी औ' निर्धन
सभ्य असंस्कृत, सज्जन दुर्जन
भव मानवता से सब को भर,
खंड मनुज को फिर से ढालो !

आवाहन

रूप धरो, नव रूप धरो !
जीवन के धन अंधकार
नव ज्योतित हो भव रूप धरो !

हे कुरूप, हे कुत्सित प्राकृत,
हे सुन्दर, हे संस्कृत, सस्मित,
आओ जग जीवन परिणय में
परिचित से मिल बाँह भरो !

कोमल कटु, कटु कोमल बन कर,
उज्वल मंद, मंद उज्वलतर,
दिवा निशा के ज्योति तमस मिल
साँझ प्रात अभिसार करो !

पतझर में मधु, मधु में पतझर,
सुख में दुख, दुख में सुख बनकर
जन्म मृत्यु में, जन्म-मृत्युहर !
भव की जीवन भीति हरो !
रूप धरो, नव रूप धरो !

लेनदेन

कातो अंधकार तन मन का !
नव प्रकाश के रजत-स्वर्ण से
बुनो तरुण पट नव जीवन का !

युग युग के बहु भेदों को धुन,
बर्बरता, पाशवता को चुन,
नव मानवता से ढँक दो हे,
कुत्सित नग्न रूप जन जन का !

दिशिपल के ताने बाने भर,
धूपछाँह रच संस्कृति सुन्दर,
बीनो स्नेह सुरुचि संयम से
शील वसन नव भव यौवन का !

सजा पुरातन को, कर नूतन,
देश देश का रँग अपनापन,
निखिल विश्व की हाट बाट में
लेन देन हो मानवपन का !

वस्तु सत्य

आज भाव से बनो वस्तु-भव !
चेतनता से रूप गंध रस
शब्द स्पर्श बन उपजो अभिनव !

बनो प्रेम से प्रेमी प्रिय जन,
सुन्दरता के सुन्दर तन-मन,
आज अतुल आनन्द राशि से
बनो विपुल जग जीवन उत्सव !

कारण से शुभ कर्म बन सकल !
सूक्ष्म बीज से पत्र, पुष्प फल,
नित्य मुक्ति में भव बन्धन बन,
बनो शक्ति से खाद्य मधु विभव !

सीमा में हे बनो असीमित,
जन्म मरण में ही चिर जीवित,
पल पल के परिवर्तन में तुम
बनो सनातनता का अनुभव !

भव मानव

आज बनो फिर तुम नव मानव !
चुन चुन सार प्रकृति से अतुलित
जीवन रूप धरो हे अभिनव !

नभ से शांति, कांति रवि से हर,
भूतों में चेतनता दो भर,
निस्तलता जलनिधि से लेकर
भू से विभव, मरुत से ले जव !

सुमनों से स्मिति, विहगों से स्वर
शशि से छवि, मधु से यौवन-वर,
सुंदरता, आनंद, प्रेम का—
भू पर विचर,—करो नव उत्सव !

आज त्याग तप, संयम साधन
सार्थक हों, पूजन आराधन,
नीरस दर्शन दर्शनीय—
मानव वपु पाकर मुग्ध करे भव !

निखिल ज्ञान विज्ञान समीक्षा,—
करता भव-इतिहास प्रतीक्षा,
मूर्तिमान नव संस्कृति बन,
आओ भव मानव ! युग युग संभव !

प्रकृति-शिशु

बढ़े प्रकृति-शिशु भव मानव में !
भय का दे पाथेय प्रकृति ने
भेजा मनुज अपरिचित भव में !

बँधा मोह बंधन में अपने,
उर में इच्छाओं के सपने
जीवन का ऐश्वर्य खोजता
वह चिर जीर्ण जगत के शव में !

जीवन इच्छा को कर संस्कृत,
प्राकृत भय के तम को ज्योतित,
विकसित हो, मानव मानव को
वह अपना सा पा अनुभव में !

निज पर में समता कर निर्मित,
मानवता का सार संकलित ;
वह भव जीवन का स्रष्टा हो,
द्रष्टा हो, रति हो चिर नव में !
बढ़े प्रकृति-शिशु भव मानव में !

आवेश

ज्यों मधुवन में गूँजते भ्रमर,
ज्यों आम्र कुंज में पिकी मुखर,
मेरी उर तंत्री से रह रह
गीतों के मधुर फूटते स्वर !

ज्यों झरते हरसिंगार झर झर,
ज्यों हिम फुहार शुचि फहर फहर,
मेरे मानस से सुंदरता
निःसृत होती त्यों निखर निखर !

गिरि उर से ज्यों बहता निर्झर,
रवि शशि से तिग्म मधुरतर कर,
मेरे मन की आवेश शांति
गीतों में पड़ती बिखर बिखर !

आत्म समर्पण

रक्त मांस की अचिर देह में
तुमने अपनापन भर
बना दिया इसको चिर पावन
नाम रूप ज्योतित कर!

बहुजन शून्य, अपरिचित जग में
प्रतिक्षण दे निज परिचय
रहने योग्य कर दिया इसको
स्नेह गेह शोभामय!

शत अतृप्त आशाऽकांक्षाएँ
तुम पर हो न्योछावर
पूर्ण हो गईं आज, जन्म की
युग युग की साधें वर!

निखिल ज्ञान विज्ञान तर्क
औ' जन्म मरण प्रश्नोत्तर
सार्थक सब हो गए पूर्ण
तन्मय प्रिय तुममें होकर!

तुम ईश्वर

सीमाओं में ही तुम असीम,
बंधन नियमों में मुक्ति सतत,
बहु रूपों में चिर एक रूप,
संघर्षों में ही शांति महत !

कलुषित दूषित में चिर पवित्र,
कुत्सित कुरूप में तुम सुंदर,
खण्डित कुंठित में पूर्ण सदा,
क्षणभंगुर में तुम नित्य अमर !

तुम पतित क्षुद्र में चिर महान,
परित्यक्तों के जीवन सहचर,
तुम विपथ गामियों के चिर पथ,
जीवन्मृत के नव जीवन वर !

तुम बाधा विघ्नों में हो बल,
जीवन के तम में चिर भास्वर,
असफलताओं में इष्ट सिद्धि,
तुम जीवों में ही हो ईश्वर !

वाणी

वाणी, वाणी,
जीवन की वाणी दो मुझको भास्वर !
मौन गगन को भेद
बोलते जिस वाणी में उडुचर,
जिसमें नीरव गिरि से निःसृत,
होते मुखरित निर्झर !

जिस वाणी में मेघ गरजते,
लहरा उठते सागर,
जिसमें नित दामिनी दमकती,
मोर नाचते सुन्दर !

वाणी, वाणी,
मुझे वस्तु-वाणी दो पूर्ण, चिरंतन !
जिस वाणी में छू मलयानिल
पुलकों से भरता तन,
जिसमें मृदु मुख कुसुम खोलते,
अणु-अणु करते नर्तन !

जिस वाणी में क्षुधा, तृषा
औ' काम दीप्त करते तन,
जिसमें इच्छा, सुखदुख उठते,
आते शैशव, यौवन !

वाणी, वाणी,
मुझे सृष्टि की वाणी दो अविनश्वर !
जो बहु वर्ण, गंध, रूपों में
करती सृजन निरंतर,
जिस वाणी में अनुभव करते
चुपके निखिल चराचर !

जो वाणी चिर जन्म-मरण
तम औ' प्रकाश से है पर,
जो वाणी जीवन की जीवन,
शाश्वत, सुंदर, अक्षर !
वाणी, वाणी,
मुझको दो घट घट की वाणी के स्वर !

युग नृत्य

आत्मा मन, वाणी तन,
अभयंकर नृत्य करो
नव युग को अखिल वरो !

नृत्य करो, नृत्य करो,
शिशिर समीर,
लुब्ध अधीर,
तांडव गति नृत्य करो
भूतल कृतकृत्य करो !